Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

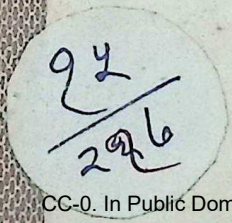

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

पुस्तक संख्या 95/296

पञ्जिका-संख्या 32577

पुस्तक पर सर्व प्रकार की निशानियां लगाना वर्जित है। कोई सज्जन पन्द्रह दिन से अधिक देर तक पुस्तक अपने पास नहीं रख सकते। अधिक देर तक रखने के लिये पुनः आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् खम्ब्रह्म *

२५५११

रुद्र ग्रन्थमाला का अष्टम पुष्प

'वामनावतार की कल्पना'

COMPILED
Stock Verification-2024
25511

Stock Verification-2024

महर्षि दयानन्द जी की पुण्य स्मृति में समर्पित

लेखक:—
वैदिक अनुसन्धान कर्त्ता शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक'

प्रकाशक:— दयानन्द वैदिक शोध संस्थान
C/o साहित्य रत्नालय, श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर (उत्तर प्रदेश)
सृष्टि संवत् १९७२९४९०५१, दयानन्दाब्द १२६, संवत् २००७ वि०
प्रथम संस्करण २०००] सन् १९५१ ई० [मूल्य ।०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक—

वैदिक अनुसन्धान कर्त्ता
शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक'
'सिद्धान्त शास्त्री', 'साहित्यालङ्कार

भूमिका लेखक—पं० मुनीश्वर देव 'सिद्धान्त शिरोमणि'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

प्रिय पाठक महोदय !

आपके सन्मुख यह रुद्रग्रन्थ माला का अष्टम पुष्प रूप 'वामनावतार की कल्पना' नामक पुस्तिका प्रस्तुत है। यह 'इदं विष्णुर्विचक्रमे०' ऋ.१-२२-१७ की ऋचाके सदाशय को न समझकर विविध पौराणिक भाष्यकारों ने जो तर्कासंगत व प्रकरणाननुमोदित 'वामनावतार' की मुधा कल्पना की है उसका युक्ति-युक्त व प्रमाणान्वित खण्डन है। इसके लेखक आर्य जगत् के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् व वैदिक अनुसन्धान कर्ता (वैदिक रिसर्च स्कालर) श्री पं० शिव पूजनसिंह जी कुशवाहा 'पथिक' साहित्यालंकार, सिद्धान्त शास्त्री कानपुर हैं। आपके अनुपम अनुसन्धान के परिणाम स्वरूप अब तक दर्जनों पुस्तकें–महर्षि दयानन्दकृत वेदभाष्यानुशीलन, भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि, अथर्व वेद की प्राचीनता, आर्य समाज के द्वितीय नियम की व्याख्या, भारतीय इतिहास और वेद, ऋग्वेद के १०म. मण्डल पर पश्चिमीय विद्वानों का कुठाराघात, वामनावतार की कल्पना आदि वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि में नक्षत्रवत् प्रकाशित होकर भारतीय विद्वन्मण्डल-गगन में चमक रही हैं। श्रीयुत कुशवाहा जी की उक्त सभी रचनाओं में आपको वेदोद्धारक वेद व्याख्याता, वेदाचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के प्रति अनुकरणीय भक्ति व श्रद्धा का प्रमाण पद २ पर मिलेगा हमारे विचार में स्व० श्री पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ तथा स्व० महामहोपाध्याय श्री पं० आर्यमुनि जी के अनन्तर वर्तमान काल में यदि कोई वस्तुतः वेदानुसंधान कर्ता है तो वे प्रशंसित श्री पं० शिव पूजनसिंह जी ही हैं।

पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य जगत् के स्वाध्याय शील सज्जनों से हमारा अनुरोध है कि वे अधिकाधिक संख्या में इनकी पुस्तकों को मंगवा कर सर्व-साधारण में वितरण कर ऋषि ऋण से उऋण होने के हेतु वेद-प्रचार व वैदिक शिक्षा प्रसारार्थ श्री कुशवाहा जी का हाथ बंटावे तथा अपने आर्योचित कर्तव्य का पालन करें। यदि कोई आर्य दानवीर इनकी रचनाओं को अपनी ओर से अर्थ व्यय करके प्रकाशित करने में अपना सहयोग दे सके तो अत्युत्तम बात हो, क्योंकि श्री पं० शिवपूजनसिंह जी के पास इतना धन नहीं है कि वे लगातार अपनी ओर से धन खर्च कर इस प्रकार का उपयोगी एवं आवश्यक वैदिक साहित्य प्रकाशित कर दे सकें। यदि आर्य भाइयों ने उक्त प्रकार सहयोग देने में विलम्ब अथवा प्रमाद किया तो इसका परिणाम शुभ न निकलेगा और आर्य समाज के लिए यह एक दुर्भाग्य पूर्ण व दुःखद प्रसंग होगा कि अर्थाभाव के कारण इनकी अमुक २ रचनाएं प्रकाशित होने से रह गईं! क्या कोई दानवीर ऐसा निकलेगा जो कि कुशवाहा जी की नवीन रचना 'आर्य संस्कृति पर कुठाराघात' के प्रकाशनार्थ सारा व्यय उन्हें देने का संकल्प कर यश का भागी बने।

अन्त में हम श्री पं० शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा को उनके इस प्रशंसनीय प्रयास के लिये धन्यवाद देते हैं और प्रभु से उनके दीर्घायुष्य व आरोग्यता के लिये हार्दिक मंगल कामना करते हैं।

विनीत—

मुनीश्वरदेव सिद्धान्त शिरोमणि

महोपदेशक आ०प्र० सभा पंजाब

व सहायक स० 'आर्य' अम्बाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् खम्ब्रह्म *

वामनावतार की कल्पना

वैदिक युग में "अवतार" की कोई कल्पना न थी, पर पौराणिक युग में अवतार की कल्पना की गई। और मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्ण, राम प्रभृति अवतार वेद से सिद्ध किया जाने लगा।

"अवतार" का अर्थ उतरना है। यह 'अव' पूर्वक तृ धातु से बनता है जिस का अर्थ उतरना होता है। यह प्रयोग सर्व व्यापक में नहीं घट सकता है। यदि परमात्मा कहीं ऊपर बैठा हो तो अवश्य उसका अवतार कहना उचित कहा जा सकता है, परन्तु सर्वव्यापक में इस का प्रयोग ही अविद्या और अज्ञान है वेदवेदान्तदर्शी महर्षि दयानन्द जी महाराज ने स्पष्ट लिखा है—

प्रश्न—ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्यों कि 'अज एक पाद्' (३४-५३) "स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" (४०-८) ये यजुर्वेद के वचन हैं, इत्यादि वचनोंसे सिद्ध है कि (परमेश्वर जन्म नहीं लेता)[१] अतएव अवतार की कल्पना निर्मूल है, फिर भी पौराणिक वर्ग निम्नांकित वेद मन्त्र से वामनावतार सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम्। समूढ़मस्यपा थं

---

१. सत्यार्थ-प्रकाश सप्तम समुल्लास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरे स्वाहा।" (ऋग्वेदमण्डल १, सूक्त २२, मंत्र १७। यजु० अ० ५ मन्त्र १५, सामवेद पूर्वार्चिकः ६)[२२२]

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्त शास्त्री' सम्पादक 'गंगा' पत्रिका तथा पण्डित गौरीनाथ जी झा व्याकरण तीर्थ अपनी ऋग्वेद संहिता, सरल हिन्दी टीका सहित, प्रथम अष्टक, प्रथम संस्करण पृष्ठ २८-२६ की पाद टिप्पणी में लिखते हैं—

"१७ वें मन्त्र के सम्बन्ध में भी बड़ा मतद्वैध है। रमानाथ सरस्वती ने लिखा है कि, मध्य एशिया से भारत वर्ष आते समय आर्यों के अग्रगन्ता विष्णु नामक आर्य पुरुष थे। उ हों ने रास्ते में तीन स्थानों पर विश्राम किया था और उनकी तथा अनुगामियों की पद-धूलि से संसार आवृत हो चला था।" इस अर्थ का रेवरेण्ड कृष्णमोहन बनर्जी ने अपने "Aryan Wirness" में ज़ोरों से अनुमोदन किया किया है। इनके मत के ही अधिकांश पाश्चात्य लेखक अनुमोदक हैं। परन्तु आर्य साहित्य इनकी कल्पना का अनुमोदन नहीं करता। युक्ति भी इसका साथ नहीं देती।

शाकपूणि आचार्य का मत है कि विष्णु ने पृथ्वी अन्त रिक्ष और आकाश में तीन प्रकार से पैर रखे थे। ऐतरेय ब्राह्मण (६-१५) में लिखा है कि देवों और असुरों के बीच जब ससार का बटवारा होने लगा, तब इन्द्र ने कहा कि अपने तीन पैरों से विष्णु जितना नाप सकें उतना संसार देवों के हिस्से, शेष असुरों के।"

असुर भी इस से सहमत हो गए और विष्णु ने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद विक्रम से जगत् के साथ ही वेद और वाक्य को भी व्याप्त कर लिया।

शतपथ ब्राह्मण (१-२-५) में उल्लेख है कि, "असुरों ने कहा कि, "वामनरूप विष्णु के शयन करने पर जितना स्थान आवृत होगा उतना देवों का, शेष असुरों का" इस प्रस्ताव का देवों ने समर्थन किया और विष्णु ने सारे संसार को आवृत कर उसे देवों को दिलवा दिया।" इस तरह अनेक प्रमाण हैं। जिन से रमानाथ सरस्वति आदि की कल्पना खण्डित होती है।

मध्य एशिया से भारतवर्ष आने में विष्णु ने तीन ही स्थानों पर विश्राम किया? क्या इतनी लम्बी यात्रा में तीन ही पड़ाव संभव हैं? क्या विष्णु और उनके चन्द आर्य अनुगामियों की पद-धूली से संसार का छिप जाना संभव है? इन सब प्रश्नों का कोई भी उत्तर नहीं है। सत्य तो यह है कि, विष्णु नामक रक्षक भगवान् के तीन पैरों से समस्त जगत् का व्याप्त होना, विष्णु द्वारा संसार की रक्षा होना और विष्णु के वामनावतार की मूल कथा स्पष्ट ही वैदिक मन्त्रों में है। उनके अर्थों की खींचातानी करना समय नष्ट करना है।"

आप लोगों ने स्वयं इस मन्त्र की टीका की है—वामनावतार धारी विष्णु ने इस जगत् की परिक्रमा की थी, उन्होंने तीन प्रकार से अपने पैर रखे थे। और उन धूली युक्त पैर से जगत छिपसा गया था।"[२]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या वारिधि पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र लिखते हैं—'अब वातनावतार की सुनिए, सामवेदे छन्द आर्चिके।'

"इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढ़मस्यपाश्ं सुरे।" २ प्र० १-१-६

(विष्णु) त्रिविक्रमावतारधारी (इदम्) प्रतीयमानं सर्वं जगदुद्दिश्य (विचक्रमे) विभज्य क्रमतेस्म (त्रेधा) त्रिभिः प्रकारै (पदं निदधे) स्वकीयं पादप्रक्षिप्तवान (अस्य) (विष्णोः) पांसुले पांसुरे वा धूलि युक्तकेपादस्थाने (समूढ़म्) इदं जगत् सम्यगन्तर्भूतम् (सेयमृग् यास्केनैव व्याख्याता विष्णु र्विंशतेर्वाप्नोतेर्वा) शतपथ में भी वामनावतार का खुलासा वर्णन है।

यथा "वामनोह विष्णुरास" श० १-२-२-५

वामन साक्षात् विष्णु ही थे। यहा वामन अवतार की पूरी कथा लिखी है।

भावार्थ—अमरेश त्रिविक्रमावतारी वामन जी इस विश्व को उल्लंघन करते हैं, तीन पग धरते हैं एक भूमि दूसरा अन्तरिक्ष तीसरा स्वर्ग में इनके चरणमें चतुर्दश ब्रह्मांड

---

२. वही पृष्ठ २७ तुलना करो आपके ही सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'गङ्गा' का 'वेदाङ्क' प्रवाह २. जनवरी १९३२ ई० तरङ्ग १. पृष्ठ १२६

३. 'दयानन्द तिमिरभास्कर' तृतीय संस्करण पृष्ठ २१०-२११ तुलना करो, आय की ही कि लिखी हुई 'अष्टादश पुराण दर्पण' स्पोद्घात, पृष्ठ ३५-३६ (संवत् १९९३, बम्बई संस्करण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्यक् अन्तरभूत होता है।"[३]

पं० कालूराम शास्त्री लिखते हैं—

विष्णु ने इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड को नापा और तीन प्रकार से पग रक्खा, इस के पद में समस्त संसार स्थित है।

इस की पुष्टि में कठोपनिषद् लिखता है कि—मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते। कठ० वल्ली० ५ श्रु० ३

मध्य में बैठे हुए वामन की विश्वेदेव उपासना करते हैं।

इस की पुष्टि में शतपथ लिखता है कि—

'वामनोह विष्णुरास। शत० १-२-२-५

विष्णु ही वामन थे।[४]

पं० माधवाचार्य शास्त्री, 'हिन्दी प्रभाकर' वेदवाचस्पति महामहोपदेशक लिखते हैं—

"...वामनावतारधारी विष्णु ने इस जगत् को तीन चरणों से आक्रान्त कर पग धरे हैं और इन के धूलीधूसर पद में यह धूमि आदि समस्त लोक अन्तर्हित हो गए।

'वामनोह विष्णुरास' शत० १-२-२-५

भगवान् वामन विष्णु थे।[५]

---

४. "आर्य समाज की मौत" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १६६ तुलना करो, आप की लिखी हुई 'आर्य समाज की अन्त्येष्टि, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ३४-३५, "ईश्वर की साकारता" प्रथम संस्करण पृष्ठ १६-२०।

५. "पुराण दिग्दर्शक" पृष्ठ १६४-१६५ (विक्रमीय संवत् २००६ देहली संस्करण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० ब्रह्मदेव शास्त्री, काव्यतीर्थ सम्पादक "ब्राह्मण सर्वस्व" इटावा लिखते है। [६]

वामना वतार का वर्णन भी वेद में बहुत स्पष्ट रीत्या पाया जाता है। यजुर्वेद अध्याय ५ का पांचवां मन्त्र है।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढ़मस्यपा शुं सुरे स्वाहा।

अर्थ—(विष्णुः) ब्रह्म (इदम्) इस जगत का (विचक्रमे) पैर से नापता भया (पदम्) पैर के (त्रेधा) तीन प्रकार से (निदधे) रक्खा। (अस्य) इस का (पांसुरे) धूलीयुक्त स्थान में पैर (समूढम्) सम्यक प्रकार से अन्तर्हित हुआ।

प्रसिद्ध वेद भाष्यकार महीधर ने इस मन्त्र का भाष्य भी अवतार परक ही किया है। वे लिखते हैं—

'विष्णुः त्रिविक्रमावतारं कृत्वा इदंविश्वंविचक्रमे विभज्य क्रमतेस्म। तदेवाह। त्रेधा पदं निदधे भूमावेकं पदमन्तरिक्षे द्वितीयं दिवि तृतीयमिति क्रमादग्नि वायु सूर्यरूपेणेत्यर्थः। पांसवो भूम्यादि लोक रूपा विद्यन्ते यस्य तत्पांसुर मस्मिन् पांसुरे अस्य विष्णोः पदं सम्यगन्तर्भूतम् विश्वमितिशेषः। यद्वायमर्थः सस्य विष्णोपदं पद्यते त्रायत इति पदमद्वैताख्यं स्वरूपं समूढ़मन्तर्हितमज्ञातमकृतात्मभिः। कस्मिन्निव। पांसुरे इव लुप्तोपमान पांसुरे रजस्वले प्रदेशे हितं यथा न ज्ञायते तद्वत् तदुक्तं (अध्याय०) ६-५ क० तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय इति। स्वाहा तस्मै विष्णवे हविर्दत्तम् ॥१५॥

[६] "वैदिक अवतारवाद" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४८ से ५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भाष्य का अर्थ करने की जरूरत नहीं। क्यों कि ऊपर जो अर्थ दिया गया है वह भी महीधर भाष्य के अनुकूल ही है। अब देखिये निरुक्त कार क्या कहते हैं। निरुक्त ही वेदार्थ की प्रक्रिया बताता है। इसीलिये निरुक्त को वेदांग माना है। आर्य समाजी भी निरुक्त को मानते हैं देखिये वह निरुक्त कार इस मन्त्र पर क्या लिखते हैं—

"यदिदं किञ्चतद्विक्रमते विष्णु स्त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णनाभः। समूढहमस्य पांसुरेप्यायनेऽन्तरिक्षे पदे न दृश्यते। अपिवोपार्थे स्यात् समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यत इति। पांसवः पादैः सूयन्त इतिवा पन्ना, शेरते इति वा पिंशनीया भवन्तीति वा।"

(यत्) जो (किञ्च) कुछ (इदम्) यह है (तत्) उसको (विष्णु) व्यापक ईश्वर (विचक्रमते) पैर से नापता भया और (त्रेधा) तीन प्रकार से (पदम्) पैर (निधत्ते) रक्खा (पृथिव्याम्) पृथ्वी में (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (दिवि) द्युलोक में (इति) यह (शाकपूणिः) शाकपूणिः का मत है।

(समारोहणे) समारोहण में (विष्णुपदे) विष्णुपद में (गयशिरसि) गयशिर में (इति) यह (और्णनाभः) और्णनाभ का मत है। (समूढ़स्य) सम्थक् बढ़ेहुए ब्रह्म का (पांसुरे) धूली रेत में जैसे (अपि) वैसे ही (आयने) अन्तरिक्ष में (पदम्) पैर (न) न (दृश्यते) दिखलाई दिया। यहां पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि अव्यय उपमा में है (समूढ़स्य पांसुल इव पदं न दृश्यते) रेत में जैसे पग दिखलाई नहीं देता। वैसे ही दिखाई नहीं देता। वैसे ही न दिखलाई दिया। (पांसवः पादै सूयन्त इति) पैरों से धूली पैदा होती है इसी कारण धूली को 'पांसु' कहते हैं।

अब बतलाइये समाजी कहां जायेंगे। वेद निरुक्त सभी तो वामनावतार की गवाही दे रहे हैं। अर्थ बदलने से भी काम न चलेगा, पाणिनि जी ने क्रम धातु को जिन २ अर्थों में आत्मने पद किया है वहां कुछ नियम बना दिये हैं। किस उपसर्ग के होने पर किस अर्थ में क्रमु धातु से आत्मने पद होगा। इस का नियम है (वेः पाद विहरणे) यह सूत्र है। इस में नियम कर दिया है कि वि उपसर्ग उपपद हो तो क्रमु धातु से तभी आत्मने पद होगा जब उठा २ कर रखना अभिप्रेत हो। वामनावतार में भगवान् ने पैर उठा २ कर रक्खे थे इस से और कुछ भी अर्थ नहीं किया जा सकता। इस वामनावतार को उपनिषद् भी कहता है—

मध्येवामन मासीनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।' कठ० उप० वल्ली० ५ मन्त्र ३

अर्थ—(मध्ये) मध्य में (आसीनं) बैठे हुए (वामनम्) वामन को (विश्वे देवाः) विश्वेदेव (उपासते) उपासना करते थे।

शतपथ भी वामन अवतार को लिखता है।

'वामनोह विष्णुरास शत० १-२-२-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—वामन साक्षात् विष्णु थे। शतपथ भी साक्षात् वेद है 'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्'।

स्वामी आसाराम सागर संन्यासी धर्मोपदेशक लिखते हैं—

"नमो ह्रस्वायच वामनायच०" (य० अ० १६ मन्त्र ३०)

इस मन्त्र में ईश्वर के वामनाऽवतार का वर्णन है।

'वामनो हि विष्णुः०। शत० १ ब्रा० ३ क० ५

इस प्रमाण से भी विष्णु परमात्मा का वामनातार सिद्ध हो चुका है।[७]

समीक्षा—इदं विष्णु विचक्रमे० मन्त्र का अर्थ महीधर सायण श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र श्री कालूराम जी श्री ब्रह्मदेव जी प्रभृति-वामनावतार परक करते हैं जिस से साधारण जनता भ्रम में पड़ जाती है कि इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ क्या है? यहाँ 'विष्णु' का अर्थ 'वामनावतार' नहीं है वरन 'परमात्मा है। यथा—

'विष्णुः परमात्मा इति' यजु० ४-१७।

"विष्णुः परमात्मा' (स्कन्दनिरुक्त टी० भा० २ पृष्ठ ५५)

'विष्णुर्व्यापक इति शत्रुघ्नाचार्यो' (मन्त्रार्थ दीपिका पृष्ठ ७)

विष्णुव्यापक इति देवपालः।

विष्णवे=परमेश्वराय (ऋषि दयानन्द यजु० ४-१७ भाष्यम्)

---

७. "सनातन हिन्दु धर्म व्याख्यान दर्पण" पूर्वार्द्ध, तृतीय संस्करण पृष्ठ २१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब (इदं विष्णु)····· का अर्थ अपने यजुर्वेद भाष्य में महर्षि दयानन्द जी करते हुए महीधर के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं यथा—

(इदम्) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं जगत्। (विष्णुः) यो वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स जगदीश्वरः। (विः) विविधार्थे। (चक्रमे) क्रान्तवान् निक्षिप्तवान् क्राम्यति क्रमिष्यति वा। अत्र सामान्येऽर्थे लिट्। (त्रेधा) त्रिप्रकारम्। (नि) नितराम् (धधे) हितवान् दधाति धारयति वा। (पदम्) पद्यते गम्यते यत्तत्। अत्र घञर्थे कविधानम्। (अ० ३-३-५८ भा० वा०) इति क प्रत्ययः। (समूढम्) सम्यगुह्यते ऽनुमीयते शब्द्यते यत्तत्। (अस्य) त्रिविधस्य जगतः। (पांसुरे) पांसवो रेणवो रजांसि रमन्ते यस्मिन्नतरिक्षेतंस्मिन्। (स्वाहा) सुहुतं जुहोत्यर्थे। इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेव व्याख्यातवान्—यदिदं किंच तद्विक्रमते विष्णुस्त्रिधानिधत्ते पदं त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णनाभं समूमूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपिवोपमार्थे स्यात् समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यत इति पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्ना शेरत इति वा पिंशनीया भवन्तीति वा। निरु० १२-१९॥ अयंमन्त्रः शत० ३-५-३-१३ व्याख्यातः॥१५॥

भावार्थ—परमेश्वरेण यत् प्रथमं प्रकाशवत् सूर्यादि. द्वितीयमप्रकाशवत् पृथिव्यादि प्रसिद्धं जद्रचितमस्ति, यच्चतृतीयं परमाण्वाद्यदृश्यं सर्वमेतत्करणावयवैरचयित्वाऽन्तरिक्षे स्थापितं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र औषध्यादि पृथिव्याम्, अग्न्यादिकंसूर्ये, परमाण्यादिकमाकाशे निहितं सर्वमेतत् प्राणानां शिरसि स्थापितवानस्ति। साहैषा गयांस्तत्र। प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गायस्त्रे तस्माद्गायत्री नाम" । (शत० १४-८-१५-६७) । अनेत गय शब्देन प्राणानां ग्रहणम्। अत्र महीधरः प्रबुक्रति त्रिविक्रमावतारं कृत्वेत्यादि तदशुद्धं सज्जनैर्बोध्यम् ॥१५॥

पदार्थ—"(विष्णुः) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ (इदम्) यह जगत् है उसको (विक्रमे) रचता हुआ इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (त्रेधा) तीन प्रकार का (निदधे) धारण करता है। (अस्य) इस प्रकाशवान, प्रकाश रहित और अदृश्य तीन प्रकार के प्रमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ इस (समूढम्) अच्छे प्रकार विचार करके कथन करने योग्य अदृश्य (पदम्) जगत् को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है, वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवन करने योग्य है ॥१५॥"

भावार्थ—"परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्यादि दूसरा प्रकाश रहित पृथ्वी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है। उस सब को करण से रच कर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है, उन में से औषधी आदि पृथ्वी में, प्रकाशादि सूर्य लोक में, और परमाणु आदि आकाश और इस जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है। इस लिखे हुए शतपथ के प्रमाण से गय शब्द से प्राणों का ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है, इस में 'महीधर' जो कहता है कि त्रिविक्रम अर्थात वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है, यह उस का कहना सर्वथा मिथ्या है ॥१५॥

इस अर्थ की पुष्टि करते हुए पं० तुलसीराम जी स्वामी शास्त्री अपने ग्रन्थ[९] में लिखते हैं—"...अन्वित पदार्थः—(विष्णुः) यज्ञः परमेश्वरोवा (इदम्) जगत् (त्रेधा) पृथ्वी अन्तरिक्ष द्यौश्चेति त्रिभिः प्रकारैः (विचक्रमे) विक्रमते विक्रान्तवान्वा। तथा (अस्य) जगतः (पाꣳसुले) रजसी प्रतिपरमाणु (समूढम्) अन्तर्हितम (पदम्) स्वरूपं (निदधे) नितरां दध्यात् दधातिवा।

अनुष्ठीयमानो यज्ञः। परमेश्वरश्च पृथिव्यामन्तरिक्षे दिविचेति त्रिषु लोकेषु व्याप्नोति। अन्तर्हितमदृश्यं स्वरूपंच अस्य जगतः प्रतिपरमाणु निदधाति इति भावः।

यज्ञोवै विष्णुः। अत्र सायणाचार्येण विष्णु शब्देन त्रिविक्रमावतार ग्रहणं निर्मूल मेव कृतम्। परमेश्वरस्याऽकायत्वान्निराकारत्वात्क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टत्वात् न च निरुक्तकारेणाऽपिताद्दशार्थाख्यानस्यकृतत्वात्। यथा—यदिदम् ·····निरुक्त १२-१९

---

८. "यहाँ गय शिरः" शब्द से प्राणों वा प्रजाओं का उत्तमाङ्ग प्रकृति रूप है, वह लिखा जाता है, तथा ईश्वर की सामर्थ्य का नाम भी 'गयशिरः' है। वह 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' 'ग्रन्थ प्रमाण्यविषयः' के पूर्वोक्त संस्कृति स्थल का अभिप्राय है।

९. "भास्कर प्रकाश" चतुर्थ संस्करण पृष्ठ १६५, १६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयशिरसीत्यत्र गय इत्यपत्यनाम । निघं० २-१०

प्रेाणावै गयाः । शतपथे १४-७-१-७- । ऋग्वेदेतु १-२२-१७ पांसुरे इति पाठः । यजुर्वेदेऽपि ५-१५ ।

भावार्थ—(विष्णुः) ज्ञा वा परमेश्वर (इदम्) इस जगत् को (त्रेधा) पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्यौः इन ३ प्रकार से (विचक्रमे) पुरुषार्थ युक्त करे वा करता है और (अस्य) इस जगत् के (पाथ्ंसुले) प्रत्येक रज परमाणु में (समूढम्) अदृश्य (पदम्) स्वरुप को (निदधे) निरन्तर धारण करे वा करता है ।

भले प्रकार अनुष्ठान क्रिया हुआ यज्ञ, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में फैले और अपने अदृश्य स्वरूप को जगत के रज २ में पहुंचावे । अथवा व्यापक परमात्मा ने पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक को तीन प्रकार से विक्रम=पुरुषार्थ युक्त किया हैं और जगत् के प्रत्येक परमाणु तक में अपने अदृश्य स्वरूप को अन्तर्यामी रूप से वर्तमान कर रखा है । इस मन्त्र को सायणाचार्य ने त्रिविक्रमाऽवतार पर लगाया है सो निर्मूल है । क्यों कि परमेश्वर अकाय होने से निराकार और क्लेश कर्मविपाकाशायों में से जुड़ा हुआ नहीं है । और निरुक्तकार ने भी इस में वामनाऽवतार का ग्रहण नहीं किया जैसा कि निरुक्त १२-१६ "व्यापक विष्णु मे इस जगत को तीन प्रकार के होने को विक्रान्त किया है । १. पृथ्वी, २. अंतरिक्ष, ३. द्युलोक यह शाकपूणि आचार्य का मत है । १. समारोहण, विष्णुपद, गयशिर यह और्णनाभ का मत है । उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदृश्य होना उपमा है कि जैसे रेत में पाँव नहीं दीखता। षाँसु रेणु का नाम है क्यों कि वे पांवों से उत्पन्न होती है वा षड़ी सोती है इत्यादि "गयशिरसि में गय संतान का नाम निघंटु २-१० के अनुसार और शतपथ १४-७-१-७ के अनुसार प्राण का नाम भी गय है। ऋ० १-१२-१७ और यजु० ५-१५ में 'पांसुरे' पाठ है।"

वेदाचार्य पं० शिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ इस मन्त्र का अर्थ अपने ग्रन्थ[१०] में लिखते हैं—·····(विष्णु) सर्व व्यापक परमात्मा (इदम्) इस दृश्यमान जगत् में (विचक्रमें) व्यापक है। केवल इसी दृश्यमान जगत् में ही व्यापक नहीं किन्तु (त्रेधा) तीनों स्थानों में पृथ्वी, अन्तरिक्ष द्युलोक में (पदम् अपना स्थान (निदधे) निहत अर्थात् स्थापित किया है। जो दृश्य वा दूर या निकट स्थान हैं उन सबों में वह रम रहा है। अथवा (त्रेधा) तीन प्रकार से (पदम्) स्थान जगत् को (निदधे) निहत अर्थात् स्थापित किया है। प्रत्येक वस्तु वाष्प द्रव और स्थूल रूप में बनाई हुई है। प्रत्येक वस्तु आकर्षण, विकर्षण और गमन युक्त है। प्रत्येक वस्तु सत्व रज और तम से युक्त है। प्रत्येक वस्तु प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा से युक्त है। इत्यादि अनेक त्रित्व से यह जगत् संयुक्त है। इस हेतु से कहा है कि इस पद (स्थान=जगत्) को तीन प्रकार से स्थापित किया है। अब आगे कहते हैं कि यद्यपि ब्रह्म सर्व व्यापक है तथापि (अस्य) इस ब्रह्म का तत्व

१०."त्रिदेव निर्णय" द्वितीया वृत्ति पृष्ठ ६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पांसुरे) अज्ञान रूप धूलीमय प्रदेश में (समूढम्) छिपा हुआ है। अज्ञानता के कारण वह नहीं दीखता यहां 'त्रेधा पदम्' से यह भी सूचित होता है। ईश्वर किसी एक स्थान में कहीं बैठा हुआ नहीं है जैसा कि अज्ञानी जन मानते हैं। किन्तु वह सर्वत्र विद्यमान है। यह उपदेश मन्त्र देता है।" चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार, मीमांसा-तीर्थ, इस मन्त्र का अर्थ अपने वेद भाष्य में करते हैं— "(विष्णु) व्यापक परमेश्वर (इदम्) इस प्रत्यक्ष और (पदम) जानने योग्य जगत् को (विचक्रमे) विविध रूप से रचता है और सब को (त्रेधा) तीन प्रकार से (निदधे) स्थिर करता है (अस्य) इस जगत् के (समूढम) भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह (पांसुरे) परमाणुओं से पूर्ण आकाश में स्थापित करता है। तीन प्रकार—एक प्रत्यक्ष प्रकाश रहित पृथिवीमय. दूसरा— अदृश्य कारण, तीसरा— प्रकाशमय सूर्यादि।"[११]

श्री आचार्य द्विजेन्द्रनाथ जी शास्त्री सिद्धान्तशिरोमणि एम० आर० ए० एस० अर्थ करते हैं—"परमेश्वर इस जगत् में विभुरूप से क्रान्त अर्थात् व्याप्त है। पृथिवी, अन्तरिक्ष

११. ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य" प्रथम खण्ड द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ११३ तुलना करो। "यजुर्वेद भाषा भाष्य" प्रथम खण्ड द्वितीया वृत्ति पृष्ठ १६३। 'सामवेद भाषा भाष्य' तृतीया वृत्ति पृष्ठ ११४। (यहां आप ने जीवात्मा और परमात्मा परक दोनों अर्थ किया है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा द्यौ इन तीनों लोकों में वह अपने पद अर्थात् स्वरूप को स्थापित करता है और परमाणु तक में उसका स्वरूप अनुमेय है"[१२]

महामहोपदेशक शास्त्रार्थमहारथी पं० शिवशर्मा जी अपने ग्रन्थ में[१३] में लिखते हैं—"(विष्णु) सर्वव्यापक ब्रह्म इस जगत् को (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष जगत् को (त्रेधा) तीन प्रकार धारण करता है (अस्य) इस प्रकाशमान् प्रकाश रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (इदम्) इस (समूढ़म्) अच्छे प्रकार विचार करने कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है।"

वेदों के उद्भट विद्वान शास्त्रार्थ महारथी पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री 'सांख्यतीर्थ' गुरुकुल सिकन्दराबाद अपने वेदभाष्य कारों का सङ्कीर्णज्ञान" शीर्षक लेख में लिखते हैं—(आचार्य महीधर के विषय में) "इस प्रकार आपने इस से ऊपर के मन्त्र में त्रिविक्रमावतार का वर्णन किया है। यह है 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्, समूढ़ मस्य पाꣳ सुरे

---

१२. "यजुर्वेदसंहिता" भाषानुवाद प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण (वैदिक संस्थान वृन्दावन) पृष्ठ ८८

१३. "सत्यार्थप्रकाश निर्णय" प्रथमखण्ड प्रथमसंस्करण पृष्ठ ६६। तुलना करो "पौराणिक पोलप्रकाश" प्रथम भाग पृष्ठ ६०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाहा' सायण तथा महीधर, विष्णु का अर्थ करते हुए 'विष्णु त्रिविक्रमावतारं कृत्वा इदंविश्व विचक्रमे विभज्य क्रमते एव' ऐसा अर्थ करते हैं। जो कि सर्वथा अशुद्ध एवं असम्भव है। यदि वे एकवार इस मन्त्र की निरुक्त व्याख्या भी देखलेते तो ऐसा अनर्थ न करते किन्तु करते क्या। उन पर तो पुराणों की छाप लगी हुई थी जो भाष्य किया गया है वह पुराणों के चश्मों से देख कर किया गाया है जिस में विज्ञान के ऊपर वल पूर्वक कुल्हाड़ा चलाया है। यहां निरुक्त कार का भाष्य कितना सुन्दर और विज्ञान युक्त है यह देखने ही योग्य है।[१४]

प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न वेदोपाध्याय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अपने निरुक्त भाष्य उत्तरार्ध प्रथमावृत्तिपृष्ठ ७-८ में लिखते हैं—

"इस मन्त्र के आधार पर पौराणिकों ने जो त्रिविक्रम वामनावतार की अशुद्ध कल्पना की है वह एक मात्र अज्ञानता का ही परिणाम है।"

"निरुक्त के १२ वें अध्याय में ३१ पदों की निरुक्ति है। ११ वें पद में विष्णु का वर्णन है।

"विष्णुः ॥११॥"

'अथ यद् विपितो भवति तद्विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा। तस्यैषा भवति।'

---

१४. सप्ताहिक "आर्यमित्र" लखनऊ का" "ऋष्यंक" वर्ष ४३ दीपावली संवत् १९९७ वि० अंक ३९-४० पृष्ठ ५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर श्री दुर्गाचार्य जी का भाष्य यह है—

"अथ यत् यदा विशितः व्यपतोऽयमेवंसूर्योरश्मिभिः भवति तत् तदा विष्णुर्भवति। विशतेर्वा यदा विष्टः प्रविष्टः सर्वतो रश्मिभि-र्भवति तदा विष्णुर्भवति। व्यश्नोतेर्वा वि पूर्वस्य वाश्नोंते, यदा रश्मिभिरतिशयनायंव्याप्तो भवति व्यानोति वा रश्मिभिरयं सर्वं तदा विष्णुरादित्यो भवति।'

अर्थ—'जब यह सूर्य रश्मियों के द्वारा व्याप्त होता है व इस का नाम विष्णु कहलाता है। जब यह रश्मियों के द्वारा अतिशय व्याप्त होता है तब विष्णु आदित्य कहलाता है। इसी विष्णु शब्द की निरुक्ति करके इसके उदाहरण में निम्नांकित मन्त्र दिया गया है।

इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढ मस्य पांसुरे। ऋ० १-२२-१७

इस मन्त्र पर श्री यास्काचार्य जी "यदिदं किंचितद् विक्रमते विष्णुः त्रिधा, निधत्ते पदं पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः, समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसी त्यौर्णनाभः।

समूढमस्य पांसुरे प्यनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यते, अपि चोपमार्थे स्यात् समूढमस्य पांसुल इव पद न दृश्यत इति। पांसवः पादैः सूयन्त इति वा, पन्ना शेरते इति वा पंसनीया भवन्तीतिवा। ८-१६।"

जब विष्णु शब्द की निरुक्ति में विष्णु को सूर्य कहा गया है तब इस मन्त्र का भी अर्थ सूर्य परक ही होना चाहिये

इस पर श्री दुर्गाचार्य जी का भाष्य देखिए—

"यदिदं किञ्चिद्विभागेनावस्थितं तद् विक्रमते विष्णु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदित्यः। अयंमितिऽयआह। त्रैधा निदधे पदम्। निधत्ते पदम्। तत्र तावत् पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। पार्थिवोग्निर्भूत्वा पृथिव्यांयत्किंचिदस्ति तद् विक्रमते तदधितिष्ठति, अन्तरिक्षे विद्युदात्मनादिवि सूर्यात्मानायदुक्तमृतमूअक्रण्वन त्रेधा भुवेकत् ऋ० ८-४- १-५। समारोहणे उदयगिरा वुद्यन् पदमेकं निधत्ते। विष्णुपदे माध्यन्दिने अन्तरिक्षे गयशिरसि सस्तंगिरौ इति और्णनाभः आचार्यो मन्यते एवं। समूढमस्यपांसुरे अस्मिन् प्यायने एतान्नन्तरिक्षे सर्वभूत वृद्धि हेतौ यन्मध्य दिन पदे विद्युदाख्यं तत् समूढम् अन्तर्हितम् न नित्यं दृश्यते। तदुक्तम्—स्वप्नमेतन्मध्यम ज्योतिरनित्य दर्शनम्। अपिवा उपमार्थे स्यात् समूढमिव पांसुले पदं न दृश्यते इति यथा पांसुले प्रदेशे पदं न्यस्त मुत्क्षेपण समनन्तमेव पांसुभिरकीर्णत्वात् न दृश्यते। एवमस्यमध्यम विद्युदात्मकं पद माविष्कृतं समकालमेवव्यवधीयते नावतिष्ठत इत्यर्थः।"

भावार्थ—"जो कुछ यह विभाग से अवस्थित है अर्थात् इस दृश्यमान जगत में जो कुछ विभाग रूप से विद्यमान है उसमे आदित्य व्यापक है। अर्थात् ऐसा कोई स्थान नहीं जहां सूर्य की गति न हो। किस प्रकार? इसका उत्तर देते हैं। तीनों स्थानों में अपने पद को स्थापन करता है। कहाँ २? पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोक में ऐसा शाकपूणिः आचार्य मानते हैं। पार्थिव अग्नि हो कर पृथ्वी में जो कुछ है उन सब में व्यापक है अन्तरिक्ष में विद्युद्रप से द्युलोक में सूर्यरूप से। जैसे कि तमूअक्रण्वन् त्रेधा भुवेकम्।' इस वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र में कहा गया है। समारोहण अर्थात् उदयगिरी पर उदय होता हुआ × एक पद रखता है, विष्णुपद अर्थात् अन्तरिक्ष में गयशिरसि अर्थात् अस्ताचल × ऐसा और्णनाभ आचार्य मानते हैं। इस अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप जो पद है है वह छिपा रहता है नित्य नहीं दिखलाई देता है। अथवा यहां उपमा मान कर यह अर्थ करना चाहिए कि जैसे धूली मय स्थान में रक्खाहुआ पैर का निशान पैर उठाते ही धूल से व्याप्त हो जानेके कारण नहीं दिखलाई देता है उसी तरह विद्युद्रूप उसका मध्यम पद अविष्कृत होने के साथ ही छिप जाता है। शेष नहीं रहजाता।

अब पाठक वर्ग स्वयं निर्णय करलें कि निरुक्तानुकूल पं० ब्रह्मदेव शास्त्री आदि का अर्थ कहां तक ठीक है।

शास्त्री जी ने 'समारोहण' पद का अर्थ नहीं किया, इसी प्रकार 'गमशिरसि' पद का अर्थ नहीं किया। 'समूढ़' पद का अर्थ 'सम्यक् बढ़े हुए' करना वैदिक साहित्य के ज्ञान का एक नमूना है। क्या आजतक किसी आचार्य ने 'समूढ़' पद का अर्थ 'सम्यक् बढ़ा हुआ' किया है? आपने 'समूढ़' को 'अस्य' का विशेषण बनालिया है यह भी आप की वैदिक योग्यता का दूसरा नमूना है।

मन्त्र में न कहीं 'वामन, पद है न कहीं 'बली' पद, व्यर्थ में खींचतान करके 'वामनावतार' सिद्ध किया गया है।

×उदयाचल और अस्ताचल कोई पर्वत नहीं हैं, किन्तु सूर्य के उदय अस्त होने के स्थान में ये दोनों शब्द रूढ़ हैं—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य पं० सत्यव्रत जी सामश्रमी लिखते हैं—'..... तैत्तरीय संहिताया मप्येष मन्त्र एवमेव सूर्य वाची विष्णु विज्ञान परत्वेन व्याख्यातः । तद्यथा—स विष्णुस्त्रेधाऽऽत्मानं विन्यधत्त–पृथिव्यां तृतीयम् , अन्तरिक्षे तृतीयम् , दिवि तृतीयम् इत्यादि (२-४-१२-६) ।

वा० रामायणेऽपि १-२१-१६—

एकेन ही पदाक्रत्स्नां पृथिवीं सो (विष्णु) ध्यऽतिष्ठत ।
द्वितीये नाव्ययं व्योम,व्यां तृतीयेन ,राघव ।" इति ।

अहो पौराणिककाल माहात्म्य ! अहो यज्ञ पर व्याख्या मात्रा ध्ययनाध्यापन माहात्म्यम् । अहो बालानां कल्पिताख्यान प्रियतानुगत्यम् ! यदत्र सर्व ब्राह्मण–निरुक्तादि मालोचयतापि सर्व वेदभाष्यकारेण सायणाचार्येण व्याख्यातोऽयं मन्त्रः—'विष्णुस्त्रिविक्रमावतार धारी' इत्यादिनेति । १५

यहां पर सामाश्रमी जी ने स्पष्ट ही विष्णु का अर्थ सूर्य किया है और अपने पक्ष की पुष्टि में तैत्तिरीय संहिता तथा वाल्मीकीय रामायण का प्रमाण दिया है और सायण भाष्य को उपहास जनक बतलाया है ।

पं० कालूराम जी तथा पं० ब्रह्मदेव जी ने कठोपनिषद् वल्ली ५ मन्त्र ३ में 'वामन' शब्द देख कर 'वामनावतार' सिद्ध करने का प्रयास किया है जो इनका बड़ा भारी पाखण्ड है ।

आप लोगों ने मन्त्र का पूर्व भाग छोड़ दिया इसलिये

---

१५. 'ऐतरेयालोचनम्' द्वितीय संस्करण पृष्ठ १६८ (सन् १६०६ ई० कलकत्ता संस्करण)

पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसे लिख कर अर्थ करने से पोल खुल जाती।

पूरा मन्त्र देखिए—"उर्ध्वप्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति। मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।"

इस मन्त्र पर श्री शङ्करभाष्य—

"(य) जो (ऊर्ध्वं) हृदय से ऊपर (प्राणं) प्राण वृत्ति वायु को (उन्नयति) ऊपर लेजाता है और (अपानं) अपान वायु को (प्रत्यग्) नीचे (अस्यति) फेंकता है। (तं) उस (मध्ये) हृदय पुण्डरीक में बैठे हुए (वामनं) आत्मा की (विश्वे) संपूर्ण (देवाः) चक्षुरादि प्राणेंद्रियां (उपासते) जैसे प्रजाएं भेट देकर राजा की उपासना करती हैं वैसे ही उस आत्मा के लिए अपना २ व्यापार करती है।"

वैदिक गवेषक श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक (पं० प्रियरत्न जी आर्य) अपने "उपनिषद् सुधासार" प्रथम संस्करण पृष्ठ १५० में इसका अर्थ लिखते है —

"(प्राणम्—ऊर्ध्वं—ऊन्नयति) प्राणों को ऊपर लेता है (अपानं—प्रत्यग्—अस्यति) अपान को उसके उलटा फेंकता है (मध्ये वामनम् आसीनम् विश्वेदेवा उपासते) उस मध्य में रहने वाले वामन—सेवनीय आत्मा को सारी इन्द्रियां आश्रित रहती हैं।"

यहाँ पर दोनों महात्माओं ने 'वामन' पद का अर्थ आत्मा परक किया है।

आपने शतपथ १-२-२-५ का एक टुकड़ा उपस्थित कर लिखा है 'वामन विष्णु' पर इदं विष्णु···मन्त्र में दिखलाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा चुका है कि विष्णु नाम अदिति का है। शतपथ में इसी का वर्णन है। प्रातः कालीन उगते हुए सूर्य को 'वामन' कहा गया है, क्योंकि उस समय वह तेज हीन छटा दिखलाई देता है। इस वामन का तो प्रतिदिन ही अवतार होता है।

स्वामी आलाराम जी सागर ने यजु० १६-३० में आये हुए 'वामन' शब्द को देख अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया है। वहां तो यह दिखलाया गया है कि (ह्रस्वाय च) आयु में छोटे, (वामनायच) शरीर के कद में छोटे अथवा रूप आदि गुणों में सुन्दर···इन सब के लिए (नमः नमः) उचित आदर और पद प्राप्त हो।

पं० ब्रह्मदेव जी ने 'वेः पाद विहरणे' 'क्रमुपाद विक्षेपे' १-३-४१ इस पाणिनीय सूत्र से 'पादविहरण' पैर रखना अर्थ किया है, परन्तु आप का भ्रम है।

आचार्य पाणिनीय कहते हैं—

"वृत्ति, सर्ग, तायनेषु क्रमः १-३-३८ वृत्तिर प्रतिबन्धः। ऋचिक्रमते बुद्धिः न प्रतिहन्यत इत्यर्थः। सग उत्साहः। अध्ययनायक्रमते उत्सहते। क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि। स्फीतानि भवन्तीत्यर्थः। अङ उद्गमने १-३-४०। आक्रमते सूर्यः। उद्यत इत्यर्थः इत्यादि।

पाद विक्षेप के अतिरिक्त वृत्ति, सर्ग, तायन, उद्गमन, आदि इन अर्थों में इनके बहुत प्रयोग भी विद्यमान हैं। इसी हेतु धातु अनेनाथक कहलाता है। इस हेतु देखकर अर्थ का निश्चय करना चाहिए। यदि यहां पादविक्षेप ही अर्थ रक्खा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय तब भी कोई क्षति नहीं होती है। ईश्वर में, मुख, पद, हस्तादि का आरोपमात्र होता है। 'विश्वतश्चक्षुरुत' 'सहस्र शीर्षा' इत्यादि में नेत्रादि का आरोपमात्र है।

सूर्य के किरण को अलंकार रूप से सूर्य के हस्त और चरण कहे गये हैं। इस हेतु सूर्य में भी घट सकता है। ऐसे २ प्रयोग संस्कृत में बहुत हैं यथा—

"ततः खनेम सुप्रतीकमग्निम्" यजु० ११-२२ में अग्नि के मुख का वर्णन है।

चत्वारिश्रृंगा त्रयोऽस्यपादा···' इस ऋग्वेद मन्त्र में यज्ञ के वा धर्म के चार सींग तीन पैर आदि का वर्णन है। क्या यज्ञ वा धर्म को अस्मदादिवत् हाथ पैर हैं?

अतएव पौराणिकों का वेद, ब्राह्मण उपनिषद् आदि से 'वामनावतार' सिद्ध करना केवल कल्पना है।

॥ इत्योम् ॥

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य समाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर के करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक की अन्य रचनाएँ

१. अथर्ववेद की प्राचीनता ।=)

२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि ।)

३. आर्य समाज के द्वितीय नियम की व्याख्या ।।)

४. भारतीय इतिहास और वेद =)

५. महर्षि दयानन्द जी कृत वेद भाष्यानुशीलन १)

६. ऋग्वेद के १० म. मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात ।-)

७. 'आर्य समाज में मूर्त्तिपूजा' ध्वांत निवारण ।।)

८. वामनावतार की कल्पना ।=)

९. आर्य संस्कृति पर कुठाराघात (प्रेस में)

2020

प्राप्तिस्थान—

(१) दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

C/o साहित्य रत्नालय, श्रद्धानन्द पार्क कानपुर।

(२) जयदेव ब्रादर्स आत्माराम पथ, बड़ौदा।

मुद्रक—भीमसेन विद्यालङ्कार

आर्य प्रिंटिंग प्रेस, निकलसन रोड, अम्बाला छावनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar